श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित जीवन-प्रबन्धन

डॉ. सूर्य प्रकाश सिंह

‘सहायकाचार्य’

संस्कृत विभाग, कला संकाय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

महाभारत के भीष्मपर्व का सर्वोत्कृष्ट अङ्ग श्रीमद्भगवद्गीता है जो हमारी भारतीय संस्कृति की आधारशीला है। गीता सर्वशास्त्रमयी ग्रन्थ है। भगवद्गीता ज्ञान का अथाह सागर है, जो मानवजीवन का प्रकाशपुञ्ज एवं दर्शन है। वस्तुतः भगवद्गीता सम्पूर्ण वैश्विक स्तर पर समूचे मानवजाति के लिए आज भी प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। गीता ही एक ऐसा पवित्र ग्रन्थ है जिसमें सृष्टि के सम्पूर्ण आध्यात्मिक पक्षों का समावेश है, जिसको पूर्णतया समझ लेने पर भारतीय चिन्तन का समस्त सार ज्ञात हो जाता है। यह सम्पूर्ण मानवजाति के आदर्श जीवन के लिए कल्याणकारी है। यह भारतीय संस्कृति एवं दार्शनिक परम्परा की अनुपम निधि है। श्रीमद्भगवद्गीता की यह उक्ति प्रसिद्ध है-

गीता सुगीता कर्तव्याः किमन्यै शास्त्रसग्रहैः।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिसृता [१]॥

अर्थात् सम्पूर्णशास्त्रों की उत्पत्ति वेदों से हुई है, वेदों का प्राकट्य ब्रह्मा जी के मुख से हुआ और ब्रह्मा जी स्वयं भगवान के नाभि कमल से उत्पन्न हुए है। इस प्रकार शास्त्र और भगवान् के बीच पर्याप्त व्यवधान पड़ गया जबकि श्रीमद्भगवद्गीता तो साक्षात् भगवान् विष्णु के मुखारविन्द से नि:सृत है। इसे समस्त उपनिषदों का सार कहा गया है-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्[१]॥

वर्तमान समय में प्रबन्धन एक महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक विषय है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां समुचित प्रबन्धन की आवश्यकता न हो। सामान्य जीवन में दिन-प्रतिदिन होने वाले क्रिया-कलापों को देखते हुए हमारे मानस में यह विचार उत्पन्न होता है कि क्या 'श्रीमद्भगवद्गीता' में आदर्श जीवन प्रबन्धन हो सकता है? यह प्रबन्धन क्या है? इसकी व्यापकता एवं गीता में प्रबन्धन पर हम थोड़ा विचार करें तो यह ज्ञात होता है कि प्रबन्धन का सामान्य अर्थ है- व्यवस्था। प्रबन्धशास्त्र के विशेषज्ञ Mary Parker Fallet के अनुसार –‘ Management is the art of getting things done through people’ अर्थात् ‘प्रबन्धन व्यक्तियों से कार्य कराने की एक कला है।’ जिसमें रूपरेखा निर्माण (Planning) , संगठन(Orgainsing), चयन(Staffing), निर्देशन(Direction), नियंत्रण(Controlling) इन सभी पहलुओं पर विचार किया जाता है। सामान्यतः प्रबन्धन वह व्यवस्था है जो समाज, कार्यक्षेत्र, तथा व्यक्ति के अनुरूप हो। फलस्वरूप हमें क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए इनका भी समावेश प्रबन्धन में भलिभांति किया जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित जीवन- प्रबन्धन वेदों, उपनिषदों के सारभूत मनोवैज्ञानिक व व्यावहारिक उपदेश है जो हमें जीवनरूपी संग्राम में लड़ने के लिए वास्तविक ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करती है। यही श्रीकृष्ण का पार्थ को दिये गये उपदेशों के चतुर्दिक् भ्रमण करता है और यही से गीता में प्रबन्धन का आरम्भ होता है। श्रीकृष्ण ने अपने मित्र अर्जुन द्वारा धृतराष्ट्र पुत्रों को वध करने के लिए प्रेरित किया जिससे समाज में एक ऐसी व्यवस्था स्थापित हो सके कि दुष्ट, अन्यायी, अधर्मी सर्वथा हनन करने योग्य होता है तथा उस हनन को साक्षात् न कहकर श्रीकृष्ण ने आत्मा की अमरता के उपदेश के द्वारा व्यक्त कर अपनी कुशलता का परिचय दिया-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे[३]॥

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण के पास शरीर की नश्वरता एवं आत्मा की अमरता जैसे दो शस्त्र है। जो अर्जुन को एक तरफ तो युद्ध करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं तो दूसरी तरफ अर्जुन को अधर्मरूपी कलंक से रक्षा करते हैं। यद्यपि अर्जुन श्रीकृष्ण के अतिप्रिय है फिर भी क्षत्रिय धर्म के अनुरूप आचरण करने के लिए आह्वाहन करते हैं -**" उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः**[४]" ऐसा कहकर क्या भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पक्षपातपूर्ण कूटनीति से बच सकते हैं? सामान्यतः हम न्यायोचितरूप से उत्तर दें तो नहीं। प्रायः हम लोग समाज में ऐसा बहुत देखते है कि जब कोई अपना प्रिय हो, निकटतम व्यक्ति हो, खासकर मित्र हो अथवा भाई हो तो उसके प्रति अनुरातिशय स्वभावतः प्रकट हो ही जाता है। किन्तु श्रीकृष्ण पूज्यदेव है, जगतनियन्ता है, विश्वम्भर है, सब कुछ करने में समर्थवान है फिर उनके प्रति कौन भला आरोप प्रत्यारोप लगा सकता है? इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने को निर्दोष सिद्ध करने हेतु एक व्यवस्था बना ली है। जिस व्यवस्था से समस्त मानव समाज भी बधा हुआ है –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते[५]॥

इतना ही नहीं भगवान् श्रीकृष्ण अपने क्रिया-कलापों को बड़े ही चातुर्यपूर्ण ढंग से आचरित करते है क्योंकि सम्पूर्ण मानव श्रीकृष्ण के मार्ग का ही अनुसरण करते है-

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः[६]॥

मानव प्रकृतितः महापुरुषों के कर्मों का अनुसरण करता है। श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, व्यवहार करते हैं अन्य लोग उसी का अनुसरण करते हैं। यदि श्रेष्ठजनों के आचरण में किञ्चित् दोष परिलक्षित होते हैं तो अनुयायिओं में भी दोष की सम्भावना स्वतः बढ़ जाती है अतः

आदर्श जीवन के लिए नेतृत्व जीवन प्रबन्धन का मूल है। यह नेतृत्व एक महत्वपूर्ण प्रबन्धन कौशल है जो हमें एक समूह के साथ एक विशेष लक्ष्य की ओर प्रेरित करने की क्षमता प्रदान करता है।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

बलं बलवतामस्मि कामरागविवर्जितम्।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ[७]**॥**

अर्थात् 'उन लोगों का बल हूँ जो व्यक्तिगत इच्छा और आसक्ति से रहित है' । सामान्यतः नेतृत्वकर्ता में आत्मविश्वास व कर्तव्यनिष्ठा होनी चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता जीवन के अर्थ और उसके उद्देश्यों के विषय में बात करती है। गीताशास्त्र ही हमें उच्च आदर्शों के अनुकरण की सीख देती है। भगवान् श्रीकृष्ण प्रबन्धन के कार्य को सम्यक् रूप से विभाजित करते हुए अपने कौशल का क्रियान्वयन करते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं - जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तो संसार में अनीति, अन्याय, सत्पुरुषों का अनादर तथा दुष्टों का आधिपत्य स्थापित हो जाता है, तब- तब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं धर्मार्थ पृथ्वी पर अवतरित होकर प्राणियों की रक्षा करते हैं -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणायसाधुनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे [८]**॥**

गीता का प्रबन्धन निष्काम कर्म पर बल देता है,जो श्रद्धालु भगवत्परायण होकर अमृततुल्य धर्म का निष्काम प्रेमभाव से सेवन करता है, वह भगवान् का अतिशय स्नेही होता है। आज व्यक्ति पूर्णतः परिणाम केन्द्रित (Result Oriented) हो गया है जिससे उनमें मानसिक तनाव

दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। ऐसी दशा में निष्कामभाव कर्म करने की एक विशिष्ट कला की ओर श्रीकृष्ण संकेत करते हैं जिससे प्राणी कर्म करता हुआ भी उन कर्मों के फलों की कामना से रहित, निर्लिप्त, ईर्ष्या, द्वेष , कालुष्य तथा स्पर्धा से रहित होता हुआ दिव्यगुणों का अपने अन्दर संवर्धन करता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बड़े ही सहज ढंग से इसी बात को बतलाते हैं -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि [१]॥

यह उपर्युक्त उपदेश सभी तनाव दूर कर देता है। सामान्यतः इसमें चार प्रमुख तथ्य हमारे सामने आते है –

१. कर्म करने में ही तेरा अधिकार है २. फल में तेरा अधिकार नहीं है ३. तु कर्मफल का हेतु मत बन ४. कर्म न करने में तेरी आसक्ति न हो।

ध्यान से देखा जाए तो इसमें पहला और चौथा चरण एक ही है तथा दूसरा और तीसरा चरण की बात एक है। कहने का आशय है कि अकर्मण्यता में रूचि होने से प्रमाद, आलस्य आदि 'तामसीवृत्ति' के साथ सम्बध हो जायेगा। कर्म तथा कर्मफल के साथ सम्बध जोड़ने पर 'राजसीवृत्ति' के साथ मेल हो जायेगा। इस प्रकार आलस्य, कर्म, कर्मफल आदि का सम्बन्ध न होने पर हमें विवेकजन्य सुख, प्रकाश, ज्ञानादि मिलता है और उसके साथ सम्बन्ध जोड़ने से 'सात्विकवृत्ति' के साथ सम्बन्ध हो जायेगा।

सामान्य जीवन में तनाव से मुक्ति का एक उपाय '**समत्वभाव**' है। सुख-दुःख, जय-पराजय, लाभ-हानि आदि सम-विषम परिस्थितियों में जो व्यक्ति समान रहता है वह '**स्थितप्रज्ञ**' है। गीता का स्थितप्रज्ञ का आदर्श मनुष्य के जीवन में संवेगात्मक परिपक्वता प्राप्त करने की ओर प्रेरित करता है जो सार्थक एवं कुशल जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है।

आज के आपाधापी युग में मनुष्य अपने नौकरी,व्यवसाय आदि में असफल होने पर शीघ्र ही किंकर्तव्यविमूढ़ व तनाव में आ जाता है। ऐसी दशा में श्रीकृष्ण का अर्जुन को दिया गया यह श्लोक उनमें समभाव उत्पन्न करती है जिससे उनमें तनाव में नियंत्रण व मानसिक स्थिरता आती है –

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते[१०]**॥**

गीता का यह उपदेश मानव जीवन में मानसिक शान्ति एवं उन्नति को प्राप्त करने का अमर सन्देश है जो वर्तमान में अतृप्त एवं असन्तुष्ट जनों के लिए औषधितुल्य है।

भगवद्गीता की यह व्यवस्था मानव में दैवगुणों के संचयन हेतु कही गई है। इसके विपरित अहंकार, क्रोध , भय, राग, तथा कामनापूर्वक किये गये कार्य पुरुषों में आसुरि प्रवृत्ति का संवर्धन करते हैं-

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।

मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥

तानहं द्विषतः क्रुरान्संसारेषु नराधमान् ।

क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु[११]**॥**

गीता हमें स्पष्टतः यह दिखलती है कि हम उपलब्ध संसाधनों का सम्यक् उपयोग कैसे करें? महाभारत के विशाल युद्ध के परिदृश्य को देखते हुए भी अर्जुन श्रीकृष्ण की नारायणी सेना ओर की तनिक भी ध्यान नहीं दिया और अपना सहायक श्रीकृष्ण को बनाया। जीवन को सुगम व सफल बनाने के लिए सर्वप्रथम हमें बौद्धिक कुशलता पर बल देना चाहिए।

आज का मनुष्य निःसन्देह बौद्धिक रूप से सम्पन्न है, तकनीकी क्रियाओं में सबल और सर्वोच्च उन्नति अवस्था में भी है किन्तु उनके जीवन में असन्तुलन और निर्णय लेने की

अक्षमता व्याप्त है। ऐसी परिस्थिति में गीता का सारगर्भित उपदेश न केवल आध्यात्मिक अपितु व्यावहारिक आदर्श जीवन का समुचित प्रबन्ध का मार्ग प्रशस्त करता है-

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं व्यक्त्वा धनञ्जय ।

सिद्ध्यासिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्चते [१२]**॥**

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने जीवन में होने वाले सम-विषय दोनों परिस्थितियों में समान दशा में रहने की बात करते हैं। इससे व्यक्ति के अन्दर सन्तुलन की स्थिति आती है जिसके परिणामस्वरूप उसका चित्त शान्तिभाव को प्राप्त करता है। यह जीवन के दीर्घकालिक सफलता का मूल है।

'लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान्[१३]**'** इस श्लोक के माध्यम से श्रीकृष्ण यह बतलाना चाहते हैं कि वे जिस कर्मफल का निश्चय करते हैं वही इच्छित फल मनुष्य को प्राप्त होते हैं। यद्यपि सांख्य और वेदान्त की दृष्टि में थोड़ा भेद प्रतीत है। यह दोनों यह मानते हैं कि मनुष्य स्वयं शुभाशुभकर्मों का अर्जन करता है। यदि ईश्वर कर्मफल प्रदाता होता तो प्राणियों की स्थितियों में इतनी विचित्रता एक ही दयालु ईश्वर के द्वारा उत्पन्न नहीं की जा सकती है। इसीलिए श्रीकृष्ण इस दोष से अपने को निर्लिप्त कर यह उपदेश करते हैं –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्[१४]**॥**

ऐसा कहकर अपनी निष्पक्ष दृष्टि को सुदृढ़ करने के लिए परमात्मा को प्राणियों के कर्मों तथा कर्मफलों से असम्बद्ध बतलाते हुए इसमें प्राणियों की प्रकृति को ही कारक मानते हैं-

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते[१५]**॥**

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म का एक सुव्यवस्थित स्वरूप हमें दृष्टिगोचर होता है । गीता के इन 18 अध्यायों में कमयोग , ज्ञानयोग , और भक्तियोग के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों का

बड़ा ही सटिक विश्लेषण प्राप्त होते हैं। युद्धभूमि में गीता का उपदेश अर्जुन के मोहभ्रम को दूर करने के लिए दिया गया है जो वर्तमान मनुष्य के मानसिक संघर्ष का प्रतीक है। यद्यपि यह कहा जाये कि गीता में आदर्शजीवन के लिए केवल कर्म का ही प्रतिपादन किया गया है तो यह अनुचित है। यह कर्म के साथ साथ ज्ञान पर भी उतना ही बल देता है। गीता जैसा कि हमने पूर्व में ही बताया है कि यह उपनिषदों का सार है इसलिए ज्ञान का संकीर्तन जैसे अनेक वाक्य ज्ञान के स्थापनार्थ हमें दृष्टिगोचर होते हैं-

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति[१६]**॥**

तथा **' ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा**[१७]**'** ऐसे उपदेश देखकर गीता 'ज्ञानाप्यायिताकृति' के रूप में जानी जाती है। किन्तु जब हम महाभारत के अंश की दृष्टि से विचार करते हैं तब गीता को 'कर्मविवेचिका' कह सकते हैं। इसी अर्थ की दृष्टि से गीता में प्रबन्धन करना सुलभ हो जाता है तभी यह जनसामान्य के साथ सम्बद्ध होती है क्योंकि आध्यात्मिकता और आत्मसाक्षात्कार ये दोनों ही अत्यन्त क्लिष्ट हैं।

हमारे कर्मों के साथ मानवीय आचार-व्यवहार का साक्षात् सम्बन्ध होता है। जीवन में आचार-व्यवहार की परिकल्पना में गीता का प्रबन्धन सर्वोच्च कोटि का है। समान्य जीवन में हम अपने समाज में तीन प्रकार के पुरुष देखते हैं । देवी-देवताओं की अर्चना करने वाले **सात्त्विक,** राक्षसों के पूजक **राजस** तथा भूतों के उपासक **तामस** पुरुष होते हैं।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।

प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥[१८]

यही नहीं गीता गृहस्थ पुरुषों द्वारा करणीय कार्यों का भी सुप्रबन्धन करती है। गीता का कथन है - प्रत्युपकार करने में असमर्थ व्यक्ति को उचित स्थान , उचित समय का विचार कर (कर्तव्यबोध) दिया गया दान **'सात्त्विक'** दान कहलाता है**,** जो दान की उत्कृष्टता तथा उसके महत्त्व को स्थापिता करता है।[१९] इसके साथ ही गीता एक सुखद जीवन यापन करने

की कला का सुचारू प्रबन्धन करती है। जिस कला में क्रोध एवं रागद्वेष के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि गीता की दृष्टि में कर्तव्य-अकर्तव्य विषयक विवेक, बुद्धिनाश तथा कार्य न करने की प्रवृत्ति बढ़ती है –

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति [१९]॥

श्रीमद्भगवद्गीता में अथाह ज्ञानराशि समाहित है। गीता का उपदेश मानवजाति के लिए अत्यन्त कल्याणकारी है। गीताशास्त्र अपनी अमूल्य शिक्षा के द्वारा

आज भी नैतिक मूल्यों की अद्भुत शक्ति द्वारा मानव जीवन के आदर्श एवं सुखद जीवनशैली का दर्शन कराने में सफल है। इसलिए गीता में प्रबन्धन की व्याख्याएं परिस्थितियों के अनुसार समय समय परिवर्तित होती रहती है। आज सर्वत्र समाज में अशान्ति व अव्यवस्था दृष्टिगोचर हो रहा है। जीवन में सामञ्जस्य का नितान्त अभाव है, विशेषकर युवावर्ग का जीवन अव्यवस्थित होने के कारण ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी समस्या का निदान गीता में बड़े ही सुन्दर ढंग से किया गया है –

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा [२०]।।

जिनका आहार एवं विहार नियमित है,उनके व्यावहारिक और पारमार्थिक कार्य यथावश्यक चेष्टा वाले होते हैं। मन, वाणी तथा शरीर से कष्ट न पहुँचाना, क्रोधाभाव, इन्द्रियों के विषयों में अनासक्ति, लोक तथा शास्त्र विरुद्ध आचरण में लज्जा धारण करना आदि ये दैवीय पुरुषों के लक्षण कहे गये हैं, जबकि अर्जुन का अपने बंधु-बांधवों को वध के लिए प्रेरित करना 'धर्मयुद्ध' कहा गया है[१९]। विशेषतः अब अर्जुन के सामने दो समस्याएं प्रकट हो जाती है- मानव दैवगुणों का संवर्धन करें अथवा युद्ध करें ? ऐसी दशा में भगवान् श्रीकृष्ण ने चातुर्वर्ण्य द्वारा आचरित व्यवहार को उचित माना है-

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः[२१]**॥**

अपि च –'**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**'[२२] ऐसे अनेक उपदेश गीता में स्वधर्म के पोषक उपलब्ध हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्षात्रधर्म के पालन न करने से स्वधर्म की हानि तथा उससे होने वाली अपयश को मरण से भी अधम बतलाकर क्षात्रधर्म के पालनार्थ युद्ध करने के लिए प्रवृत्त कराकर अत्यन्त ही चातुर्यपूर्वक अर्जुन को अधर्म से बचा लेते हैं[२२]।

धर्म-अधर्म तथा करणीय-अकरणीय ये परस्पर दो विरोधी चिन्तन हैं, जो हमारे जीवन में यदा कदा उहापोहात्मक परिस्थिति में लाकर हमें किंकर्तव्यविमूढ़ कर देते हैं।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्[२३]**॥**

जैसे वाक्य बुद्धि की विवशता को प्रकट करते हैं,जिससे समुचित व्यवस्था स्थापित नहीं हो पाती और व्यामोह की स्थिति बनी रहती है। ऐसी दशा में श्रीकृष्णरूपी अस्त्र ही सहायक सिद्ध होते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं वज्र ।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः[२४]**॥**

श्रीकृष्ण शरणागत के साथ सदैव उदार व्यवहार रखते हैं। गीता के प्रारम्भ में ही श्रीकृष्ण अर्जुन के बातों को बड़े ही धैर्यपूर्वक शान्तभाव से सुनते हैं क्योंकि अर्जुन युद्ध से विमुख होकर श्रीचरणों में नतमस्तक होकर शरणागत हो गया –

कार्यण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्[२५]॥

गीता का यह वचन हमारे जीवन में एक कुशल व्यवहार की शिक्षा देता है कि श्रेष्ठजनों को अपने अधीनस्थ जनों की बातों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए। यह समस्या आज सर्वत्र विद्यमान है। शरणगत व्यक्ति को यदि उसकी समस्या का निदान नहीं मिल पाता तो वह तनावग्रस्त हो जाता है। हमें खुशहाल जीवन के लिए भगवत्शरण में जाना चाहिए। इससे समस्त सांसारिक दुःखों से निवृत्ति मिल जाती है,क्योंकि ईश्वर प्रत्येक जीव में विद्यमान है-

'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः[२६]' | गीता हमें रागद्वेष से मुक्त रहने की सीख देती है क्योंकि रागद्वेष से रहित व्यक्ति का चित्त सदैव प्रसन्न रहता है और ऐसे में सर्वदुःखों का विनाश सम्भव हो जाता है-

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति[२७]॥

इसके लिए हमें अपने गुरु और शास्त्र में श्रद्धा रखना आवश्यक है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए अहंकार व अकड़ नहीं अपितु श्रद्धा की आवश्यकता होती है। गीता कहती है –

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति[२८]॥

इस प्रकार श्रद्धालु व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य शीघ्र ही पूर्ण शान्ति को प्राप्त कर लेता है। यह गीता का व्यवहारदर्शन ज्ञानी पुरुष के लिए तो मोक्ष का द्वार खोलता है और सामान्य मनुष्यों को भी सुचारू जीवन व्यतीत करने का उपदेश देता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण का अर्जुन को दिया गया उपदेश एक ही कार्य पर केन्द्रित करता है, वह है अर्जुन में निर्णय लेने की क्षमता। युद्धभूमि में खड़े अर्जुन को परस्पर विरोधी मूल्यों अथवा विकट परिस्थिति में जटिल निर्णय लेने की कला में निपुण बनाना ही भगवान् श्रीकृष्ण का प्रबन्धन हैं। जब व्यक्ति भावनाओं में आकर कोई निर्णय लेता है तो अनिष्ट की आशंका बन जाती है। बुद्धि से युक्त मनुष्य कर्मों में प्रायः कुशल हो जाता है और उसका

विवेकपूर्ण निर्णय उसे सफलता, भावनात्मक सन्तुलन व उचित रणनीतिक दृष्टि की ओर ले जाती है-

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते[२९]**॥**

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में आदर्श जीवन की जो सामाजिक व्यवस्था का संवर्धन किया है वह युग-युगान्तर तक बनी रहें इसके लिए कृतसंकल्प हैं। इसी लिए गीतोपदेश की परम्परा को निरन्तर चलाने वाले भक्त को वे'**प्रियतर भक्त**[३०]' की संज्ञा से विभूषित करते हैं।

अतः परिस्थिति के अनुरूप गीता की व्यापक दृष्टि मानवों के लिए उचित मानको का निर्वहन कर एक मार्ग प्रशस्त करती है। गीता समस्त प्रबन्धनों में नियंत्रण की भूमिका सर्वाधिक प्रभावशाली है। श्रीकृष्ण कहते हैं-

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः[३१]**॥**

मनुष्य स्वयं अपना मित्र अथवा शत्रु है। जब कोई मनुष्य आलस्य करता है तो वह स्वयं अपनी उन्नति का बाधक बनता है। इस प्रकार अनुशासन अथवा आत्म नियंत्रण द्वारा ही जीवन के अतिदुरूह मार्ग पर चल सकते हैं। यही आत्म- नियंत्रण सकारात्मक मानसिकता को सुदृढ़ करता है। इसके अतिरिक्त गीता में रूपरेखा, संगठन एवं निर्देशन पर भी बल दिया गया है। इस प्रकार आधुनिक प्रबन्धन का सर्वाङ्गीण स्वरूप गीता में दृष्टिगोचर होता है। यदि यह कहा जाये कि गीता के विशिष्ट प्रबंधन को दृष्टि में रखकर ही आधुनिक प्रबन्धन की व्याख्या की गई है तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। इससे भारतीय संस्कृति एवं धर्म की एक सुदृढ़ परम्परा विकसित होती हैं।

व्यावहारिक रूप से देखा जाये तो गीता में जीवन प्रबन्धन, आत्म-प्रबन्धन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र इत्यादि जैसे गम्भीर विषयों का विशद विवेचन है। निःसन्देह

हमारे प्राचीन ऋषियों का समग्र चिन्तन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मानव कल्याण के लिए है किन्तु भगवद्गीता की शिक्षाएं प्रत्यक्ष रूप से मानव को विशेष जीवन दर्शन प्रदान करती है। प्रसिद्ध लोकश्रुति है- **'यादृशं यस्य दर्शनं तादृशं तस्य जीवनम्'**। वर्तमान जीवन में गीता का प्रबन्धन (व्यवस्था) अत्यन्त उपयोगी है। गीता के कर्मयोग से कार्य की दक्षता में वृद्धि होती है, समत्वभाव से मानसिक शान्ति, आत्मनियंत्रण से सफलता तथा सम्यक् नेतृत्व से समूचे समाज का विकास होता है, इसलिए गीता का प्रबन्धन आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

जयतु भारतम्। जयतु संस्कृतम् ॥

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

१. गीता माहात्म्य।

२. वहीं।

३. श्रीमद्भगवद्गीता २/२०, गीता प्रेस गोरखपुर।

४. श्रीमद्भगवद्गीता ३/३७।

५. श्रीमद्भगवद्गीता ३/२१।

६. श्रीमद्भगवद्गीता ३/२३।

७. श्रीमद्भगवद्गीता ७/११।

८. श्रीमद्भगवद्गीता ४/७-८।

९. श्रीमद्भगवद्गीता २/४७।

१०. श्रीमद्भगवद्गीता २/५६।

११. श्रीमद्भगवद्गीता १६/१८-१९।

१२. श्रीमद्भगवद्गीता २/४८।

१३. श्रीमद्भगवद्गीता ७/२२।

१४. श्रीमद्भगवद्गीता ९/२९।

१५. श्रीमद्भगवद्गीता ५/१४।

१६. श्रीमद्भगवद्गीता ४/३८।

१७. श्रीमद्भगवद्गीता ४/३७।

१८. श्रीमद्भगवद्गीता १७/४।

१९. श्रीमद्भगवद्गीता २/६३।

२०. श्रीमद्भगवद्गीता ६/१७।

२१. श्रीमद्भगवद्गीता ३/३५।

२२. श्रीमद्भगवद्गीता १८/४५।

२३. श्रीमद्भगवद्गीता ३/२।

२४. श्रीमद्भगवद्गीता १८/६६।

२५. श्रीमद्भगवद्गीता २/७।

२६. श्रीमद्भगवद्गीता १५/१५।

२७. श्रीमद्भगवद्गीता २/६४।

२८. श्रीमद्भगवद्गीता ४/३९।

२९. श्रीमद्भगवद्गीता २/५९।

३०. श्रीमद्भगवद्गीता १८/६९।

३१. श्रीमद्भगवद्गीता ६/५।